ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 487-490

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-I, Issues-16, YEAR- June -2020

श्री अरविन्द के दर्शन में विकासवाद और दिव्य जीवन

डॉ0 राघवेन्द्र प्रताप मिश्र

प्रवक्ता– दर्शनशास्त्र विभाग, बुद्ध पी0जी0 कॉलेज, कुशीनगर (उ0प्र0), भारत

Received- 12.07.2020, Revised- 15.07.2020, Accepted - 19.07.2020 E-mail: -aaryvart2013@gmail.com

सारांश : श्री अरविन्द का व्यक्तित्व एवं प्रतिभा प्रखर तथा बहुआयामी था। बंधन से उन्हें परहेज था, तभी तो भारत की गुलामी के बंधनों ने उन्हें उद्वेलित कर दिया था। इस बंधन को काटने के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन में कूद पड़े। पर शीघ्र ही उन्हें यह आभास हुआ कि असली बंधन तो मनुष्य की अज्ञानता है। यह अज्ञानता ही सभी समस्याओं की जड़ है। साम्राज्यवाद भी इसी अज्ञानता का कुपरिणाम है। श्री अरविन्द अज्ञान रुपी इस बंधन को काटने, मानवता का सर्वांगीण विकास करने तथा दिव्य जीवन को लाने के लिए साधना का पथ चुना और वे सन्यासी जीवन के पथिक बन गए। इसी पथ पर चलते हुए अपने उच्चतर साधना और ज्ञान के द्वारा मानव के जीवन पथ को निरंतर तथा सतत् आलोकित करने का अनथक प्रयास जीवनभर करते रहे। वास्तव में वे एक महान कर्मयोगी थे। उनका दर्शन तथा उनके विचार अज्ञान के अंधकार में भटकते हुए मनुष्य के लिए प्रकाश स्तम्भ की भाँति है।

कुंजीभूत शब्द– व्यक्तित्व एवं प्रतिभा, बहुआयामी, उद्वेलित, राष्ट्रीय आन्दोलन, आभास, अज्ञानता, विचार।

श्री अरविन्द भारत की प्राचीन ऋषि परम्परा के आधुनिक संस्करण हैं। पारम्परिक रुप से उनका भी यह मानना था कि दृष्टिगत अखिल ब्रह्माण्ड के पीछे एक सत्ता और चेतना का सत्य स्वरुप है (The reality of a being and consciousness), सब वस्तुओं की एक अद्वितीय और शाश्वत आत्मा है। सभी सत्ताएं उस एक आत्मा के अन्दर युक्त है, परन्तु चेतना की एक प्रकार की पृथकता के कारण मन, प्राण और शरीर में अपनी सत्य आत्मा और सत्य स्वरुप के विषय का ज्ञान न होने के कारण विभक्त है। वस्तुतः उच्च कोटि की साधना के द्वारा भेदात्मक चेतना के इस आवरण का भेदन किया जा सकता है और अपने आत्म स्वरुप को अपने अन्दर तथा सबके अन्दर विद्यमान परम तत्व को जाना जा सकता है।

डॉ० राधाकृष्णन ने श्री अरविन्द पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि– "समकालीन भारतीय चिंतकों में श्री अरविन्द सबसे अधिक मेधावी चिंतक हैं। दर्शन के मूलभूत तत्वों तक उनकी पहुँच, आंतरिक जीवन के निर्माण की दिशा में उनका निष्ठावान प्रयास और मानवता तथा उसके भविष्य के प्रति उनका अगाध प्रेम उनकी .तियों को वह गहराई एवं सम्पूर्णता प्रदान करता है, जो अत्यन्त दुर्लभ है।[1]

डॉ० राधाकृष्णन के ये शब्द श्री अरविन्द की उपलब्धियोंका मूल्यांकन तो करते ही हैं, उनके दर्शन की महत्ता को भी अभिव्यक्त करते हैं।

विज्ञान और दर्शन के कई सम्प्रदायों तथा सामान्य जनमानस में विकास को लेकर एक आम धारणा प्रचलित है कि विकास निम्न से उच्च की ओर होता है पर श्री अरविन्द के दर्शन में विकास की अवधारणा इस रुप में नहीं है, बल्कि नवीनता और मौलिकता लिए हुए है। श्री अरविन्द के दर्शन में विकास का तात्पर्य है– निम्नतर का उच्चतर में विकसित होना और यह तभी सम्भव होता है जब उच्चतर का निम्नतर में भी अवतरण हो। जड़ से प्राण का विकास इसी कारण सम्भव होता है कि प्राणतत्व जड़तत्व में उतर आता है। प्राण का विकास मन में भी इसी कारण सम्भव है कि मन प्राण में उतर आता है। निम्नतर गोलार्ध के तत्वों का उच्चतर रुपों में विकास इसी कारण होता है कि उच्चतर रुपों का इनमें अवतरण होता है। श्री अरविन्द के अनुसार निम्नतर तत्वों का उच्चतर तत्वों में तब तक विकास नही हो सकता जब तक कि उच्चतर तत्व उनमें उनर न आये।[2] शून्य से शून्य प्राप्त होता है। गीता के अनुसार जो असत् हे उसका भाव नहीं हो सकता (नासतो विद्यते भावो)। श्री अरविन्द विकास/उत्थान को अवतरण की विपरित क्रिया मानते हैं। यहा विपरित शब्द नकारात्मक अर्थ में नहीं प्रयुक्त हुआ है बल्कि विकास और अवतरण एक ही पथ में दोनों ओर से अग्रसर होने वाली क्रिया है।

श्री अरविन्द की विकास प्रक्रिया न केवल निम्नतर तत्वों के आरोहण के द्वारा स्पष्ट हो सकती है और न ही केवल उच्चतर तत्वों के अवरोहण से। दोनों क्रिया आवश्यक है। इस विकास प्रक्रिया के अन्तर्गत जैसे–जैसे निम्नतर तत्व उच्चतर तत्वों के अवरोहण के लिए तैयार होते जायेंगें, उच्चतर तत्वों का अवरोहण तथा प्रकटीकरण निम्नतर तत्वों में होता जायेगा। निम्नतर तत्व उच्चतर तत्वों के स्वागत के लिए तयार हो न हो तो उच्चतर तत्वों का आगमन सम्भव नही होगा उनका आगमन व्यर्थ हो जायगा।

श्री अरविन्द के विकासवाद में जो अंत में स्थापित होता है, यह इस पूरी विकास प्रक्रिया के प्रारंभिक बिन्दु पर ही अवतरित है। यद्यपि अरस्तू के विकास सिद्धान्त से श्री अरविन्द का विकास भिन्न है परन्तु अरस्तु ने भी कहा था कि अंतत

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-I, Issues-16, YEAR- June -2020

प्रारम्भ से विद्धमान है। यदि अंत आरम्भ से विद्यमान नहीं होता तो, विकास नही सकता।[3] उच्चतर गोलार्द्ध का चरम तत्व परमसत है और वह अवतरित है निम्नतर गोलार्द्ध के प्रारम्भिक बिन्दु जड़ तत्व में। पूर्ण विकास के बाद जड़ तत्व में विद्यमान परम सत् की चेतना का ज्ञान होत है। यह परमसत् पहले से जड़तत्व में प्रसुप्त रुप से विद्यमान रहता है। शांकर वेदान्त में भी कहा गया है कि जीव मूलतः ब्रह्म ही है। आत्म चेतना का उन्नयन न होने के कारण हम अपने स्वरुप से अनभिज्ञ रहते हैं। इसी आत्म चेतना का ज्ञान होने पर जीव कह उठता है– अहम ब्रह्मास्मि। वह अवस्था किसी नवीन अवस्था की प्राप्ति नही है। यह पहले से ही प्राप्त है। जरुरत है– अपनी आत्म चेतना को उन्नत करना। हाँ, अद्ववेती इस प्रक्रिया को विकास न कह कर अविद्या निवृत्ति कहता है।

श्री अरविन्द का विकासवाद अत्यंत मौलिक, समग्र और समावेशी है। जहाँ पाश्चात्य विकासवादियों का .ष्टिकोण मुख्यतः बौद्धिक एवं जैविक है, वही भारतीय विकासवादी सिद्धान्त मूलतः आध्यात्मिक है, परन्तु वे व्यक्तिपरक है। वस्तुतः श्री अरविन्द का मूल उद्देश्य इन दोनो सिद्धान्तों की कमियों को दूर कर एक समग्र विकासवादी दृष्टि प्रस्तुत करना है जिसमें सर्वमुक्ति की शिक्षा के साथ–साथ शरीर और मने के रुपांतर द्वारा अतिमानव बनने की उदात्त प्रेरणा भी निहित है।

श्री अरविन्द विकास के पश्चिमी मॉडल जो डार्विन द्वारा प्रतिपादित है, जैविकीय व्याख्या एवं आग्रह को खारिज कर उसकी आध्यात्मिक व्याख्या करने का प्रयत्न करते हैं। उनके अनुसार सम्पूर्ण विकास चेतना का ही विकास है जो स्वेच्छा से जड़ पदार्थ में प्रसुप्त रुप में विद्यमान रहती है। दूसरे शब्दों में जड़ तत्व में निहित चेतना का उद्भव ही निरन्तर विकास की गतिशील प्रक्रिया है। श्री अरविन्द के शब्दों में "आध्यात्मिक विकास ही इस पार्थिव अस्तित्व का मूल स्वर, इसका केन्द्रीय सार्थक हेतु है–निरन्तर विकासशील स्व–रुपायन के रुप में पदार्थ में चेतना का तब तक विकास होता है जब तक रुप अन्तर्वासी आत्मा का उद्घाटन न कर दे।[4]

श्री अरविन्द के विकासवाद में तीन चरण दृष्टिगत होते हैं–

1. विस्तारण– अर्थात हर नये विकसित रुप को पूर्णतया विस्तृत रुप से विकसित होने का अवसर मिलता रहे।
2. उर्वीकरण– इसका अर्थ चेतना का फैलाव या विस्तार नहीं है बल्कि चेतना का एक स्तर से उच्चतर स्तर की ओर विकास या आरोहण या उन्नयन है।
3. समग्रीकरण– यह विकास प्रक्रिया का सबसे महत्वपूर्ण चरण है। यहाँ विकास का अर्थ निम्नतर कपा का निषेध नहीं है। जैसे– जड तत्व से जीवन में प्रकट होने पर जल तत्व नष्ट नहीं हो जाता और न ही मन में प्रकट होने पर जीवन नष्ट होता है, बल्कि उच्चतर तत्व में प्रकट होने पर निम्नतर तत्त्व का संशोधन परिष्करण तथा उद्धार हो जाता है।

प्रो० एस०के० मोइत्रा इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए एक सुन्दर उदाहरण देते है। उन्होंने इस सोनाकसस प्रकार से आगे बढ़ने से की है जो आगे बढ़ते हुए हर पाक पर अपना सम्पर्क बनाये रखती है। यह विकास सेना की उस प्रगति जैसी नहीं है जहाँ उसका सम्पर्क प्रारम्भिक स्थल से टूट जाता है. हर क्षण वह एक स्थल को छोड़ आगे निकल जाता है।

श्री अरविन्द के अनुसार विकास जड तत्त्व, प्राण तत्व, मन से गुजरते हुए मानस के स्तर तक पहुँच चुकी है। मानस अपने पहले के तीनों स्तरों को समेटे हुए है, क्योंकि वह उन्हीं तीनों में विकसित हुआ है। अब मानस का लक्ष्य अतिमानस स्तर में है बल्कि निम्न रूपों को भी उपर उठाना है. उन्हें परिमार्जित एवं संस्कारित करना है उन्हें हर स्तर पर साथ–साथ रखना पहुँचनें की है। यह विकास अभी मूर्त रुप नहीं लिया है। यह विकास प्रक्रिया का अंतिम सोपान होगा क्योंकि अतिमानस के स्तर पर पहुँचते ही परम सत् की आभा, उसकी चेतना स्पष्ट महसूस होने लगेगी।

श्री अरविन्द्र के अनुसार जो चेतना जड़ तत्व में सुषुप्ति में अन्तर्निहित है, वहीं चेतना विकास की प्रक्रिया के द्वारा अपने आप को मुक्त या प्रकट करती है। जो कुछ निश्चेतन प्रतीत होता है उसी में चेतना दिखायी देती है और जब एक बार चेतना प्रकट हो जाती है तो उसके बाद अपने आप ही क्रमशः ऊँची होती और साथ ही बडी से बडी पूर्णता की ओर बढ़ती और विकसित होती है। यह विकास मानस तक पहुंच चका है यहाँ पहुँचकर विकास क्रम रुक नही जायेगा, उसे अभी आगे जाना है। विकास का अगला कदम होगा मानस के अतिमानस बनने तथा आत्मा के सर्वोपरि शक्ति बनने की ओर प्रगति करना। केवल इसी अवस्था में सभी वस्तुओं में अन्तलीन भगवान अपने आप को पूरी तरह मुक्त करेगें, व्यक्त करेंगें।

श्री अरविन्द यह भी कहते है कि मनुष्य अपने आध्यात्मिक प्रयासों से विकास की गति को तीव्र कर सकता है। श्रीअरविन्द विकास के सामान्य स्वरुप की व्याख्या के साथ–साथ उसे व्यक्ति केन्द्रित भी बनाते हैं। व्यक्ति का विकास जगत के विकास से भिन्न नहीं है। वैयक्तिक विकास से जगत के समग्र विकास की गति तीव्र हो सकती है जिससे अतिमानसिक जगत के अवतरण की संभावना शीघ्र हो सकती है।

निष्कर्षतः कहे तो श्रीअरविन्द का विकासवाद समग्र तथा समावेशी है। "सबका साथ सबका विकास' इस सूक्ति

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-I, Issues-16, YEAR- June -2020

वाक्य में उनकी आस्था एवं निष्ठा है। इसमें एक तरफ भारतीय मनीषा के चिंतन की आध्यात्मिकता तथा पश्चिमी सिद्धान्तों की बौद्धिकता का अभूतपूर्व सामंजस्य हुआ है। इसके अलावा भारतीय विकासवादी सिद्धान्तों की व्यक्तिपरता का शोधन, संशोधन एवं परिमार्जन कर श्रीअरविन्द ने एक उदार वैश्विक .ष्टिकोण का विकास किया है। संक्षेप में, श्रीअरविन्द के विकासवाद की तीन मूलभूत विशेषताएं है– 1. सर्वमुक्ति, 2. इस मुक्ति की अवस्था में शरीर और मन के रुपांतरण द्वारा एक नये रंग रोगन और कलेवर में नये जीवन की प्राप्ति, 3 अतिमानव के स्तर पर पहुँचना।

इस प्रकार श्रीअरविन्द का विकासवाद क्रमबद्ध तथा सोद्देश्य है। यह उद्देश्य, दिव्य जीवन की प्राप्ति है। यह अतिमानसिक रुपांतरण से सम्भव है। अतिमानस का आत्म में अवतरण ही अतिमानसिक रुपांतरण है।

इसके लिए अपने व्यक्तित्व तथा उसकी चेतना को शारीरिक, मानसिक तथा प्राणिक आवरणों से उपर उठना होगा। इसके लिए हमें अपने भीतर विशुद्ध आध्यात्मिकता का सृजन करना होगा। वेदांत में शब्दों में चित्त शुद्ध करना होगा। तभी वहाँ ईश्वरत्व का प्रवेश स मानसिक जगत के प्रति दृष्टि ही बदल जाती है। अब आत्म अज्ञान के क्षेत्र में नहीं रहेगा तथा उसकी .ष्टि ज्ञान पूर्ण होगी। अब मानव ज्ञान पुरुष कहलायेगा और उसका जीवन दिव्य जीवन हो जाएगा। परन्तु श्रीअरविन्द स्पष्टतः कहते है कि मानव का चरम आदर्श केवल अपना अतिमानसिक रुपांतरण नहीं है। केवल अपनी मुक्ति तो हीनयानी बौद्धों का आदर्श है। यह हीनयानियों के 'अर्हत के समान वाली अवधारणा नहीं है। केवल अपनी मुक्ति ही श्रीअरविन्द का अभीष्ट नहीं है। ज्ञान पुरुष को अन्य के रुपान्तरण तथा जगत में दिव्य जीवन के आगमन के लिए भी कार्य करना है। यहाँ ज्ञान पुरुष की यह अवधारणा महायान बौद्धों की बोधिसत्व से मेल खाती है जहाँ बोधिसत्व भी सम्पूर्ण मानवता की मुक्ति के लिए प्रयासरत है। एक व्यक्ति का अतिमानसिक रुपांतरण जगत की परिणति नहीं है बल्कि पूर्ण जीवन तथा सम्पूर्ण जागतिक क्रियाओं का सम्पूर्ण रुपान्तरण जगत की अंतिम परिणति है। तब यह सम्पूर्ण जगत ज्ञान पुरुषों का जगत बन जायेगा और यहाँ का जीवन दिव्य जीवन होगा यह ऐसा जीवन होगा जहाँ कोई कार्य अज्ञानतावश नही होगें बल्कि पूर्णत ज्ञान के अनुरूप होगें जहाँ सभी मुक्त होगें। इस प्रकार श्रीअरविन्द के अनुसार दिव्य जीवन वह जीवन होगा, जहाँ सभी मानव ज्ञान पुरुष होंगे। यह जीवन सीमित चेतना का जीवन नहीं होगा। इस जीवन में चेतना शरीर व मन की परिधि से बँधी नहीं होगी. बल्कि वह पूर्ण ज्ञानात्मक चेतना होगी। दिव्य जीवन का अर्थ है– इसी धरती पर पूर्णता का जीवन, ईश्वरत्व रूप का जीवन। यह प्लेटो के प्रत्यय जगत जैसा जगत या जीवन नहीं होगा और न ही धर्म शास्त्रों में वर्णित स्वर्गलोक जैसा जीवन होगा जो हमसे दूर तथा पृथक है जहाँ दिव्य जीवन का भोग करने के लिए जाना होता है। श्रीअरविन्द के विकास का लक्ष्य संसार से विदा हो जाना, स्वर्ग में जीवन बिताना या निर्माण या मोक्ष पाना नहीं है बल्कि जीवन व सत्ता का परिवर्तन करना, चेतना का उन्नयन करना है– किसी गौण या प्रासंगिक कार्य के तौर पर नहीं वरन विशेष और मुख्य उद्देश्य के तौर पर।

दिव्य जीवन के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए श्रीअरविन्द ने कहा है कि ज्व इम ंदक जव इम निससलपे दंजनतमे ंपउ पद ने (हममें प्र.ति का लक्ष्य यही है कि हम पूर्णता में अस्तित्ववान रहे अर्थात् 'पूर्णता में होने का अर्थ है–दिव्य जीवन में जीवन पूर्णतया चेतन होगा। अभी तक का जीवन एक प्रकार से अचेतनता का जीवन है। हम जीवन के विविध रूपों तथा ढंगों से एक प्रकार से अज्ञात ही है पर दिव्य जीवन में जीवन के ढंग अज्ञात नहीं रहेंगें। हम अस्तित्व की पूर्ण चेतना के साथ अस्तित्वान रहेंगे।

दिव्य जीवन की अवस्था में आत्म का अपनी शक्तियों, कार्यों एवं अपने सामर्थ्य पर पूर्ण नियन्त्रण रहेगा क्योंकि उसमें संगठित एकत्व की चेतना होगी अर्थात् पूर्ण आत्म नियन्त्रण होगा। यह जीवन मूलतः आन्तरिकता का जीवन होगा। यह स्व और जगत की क्षुद्र सीमाओं से परे का जीवन होगा।

संक्षेप में दिव्य जीवन पृथ्वी पर पूर्णता के अवतरण का जीवन है जहाँ सभी प्रकार की सीमितता, क्षुद्रता, लघुता तथा पृथक्ता समाप्त हो जाती है। पूर्ण एकत्व का जीवन आकार लेता है। यह जीवन पूर्ण आनन्द का जीवन है। यही आत्म का, मानव का अन्तिम लक्ष्य और आदर्श है। यही मानव भवितव्यता है।

वस्तुतः यही हमारा कर्तव्य भी है। बहिर्मुखी इन्द्रियों को अन्तर्मुखी बनाकर वास्तविक आत्मज्ञान के आधार पर मानव–मानव में एकात्मकता की अनुभूति कराकर इस संसार के संघर्ष समाप्त किये जा सकते। मानस को जड़ प्र.ति एवं प्राण के प्रभाव से पूर्ण मुक्त करना आसान नहीं है, किन्तु असम्भव भी नहीं है। प्राण और प्र.ति पर विजय प्राप्त किया जा सकता है। इसी से दिव्य जीवन सम्भव है।

प्रकृति रहेगी बनी व्यंजना गुहय ईश की परमात्मा नायक होगा मानव गतिविधि का पार्थिव जीवन दिव्य सुजीवन बन जायेगा।

1. दिवाकर आर.आर. महायोगी श्रीअरविन्द में डॉ० राधाकृष्णन की भूमिका।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-I, Issues-16, YEAR- June -2020

2. बी.के. लात–समकालीन भारतीय दर्शन, पृ० 217 प्रथम संस्करण, 1991, मोतीलाल बनारसी दास, नई दिल्ली।
3. बी.एन. सिंह–पाश्चात्य दर्शन, पृ० 94. सप्तम संस्करण 1992 स्टूडेन्ट्स फ्रेण्ड्स एण्ड क०, वाराणसी।
4. श्री अरविन्द–लाइफ डिवाइन, पृ० 734, पाण्डिचेरी, 1955.
5. एस.के. मोइत्रा दी फिलोसफी ऑफ श्री अरविन्द पृ० 66–67.
6. श्री अरविन्द सोसाइटी हिन्दी क्षेत्रीय समिति द्वारा श्रीअरविन्द पर प्रकाशित पुस्तक से उद्धृत पृ०11.

*****